# रससूत्रं विविच्यताम्

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥

रसविषय में आचार्य मम्मट का यह रससूत्र है इसका भाव है कि लोक में रत्यादि स्थायीभाव के (ललनादिविषयक प्रीति) कारण (रमणी आदि आलम्बन, चन्द्रोदयादि उद्दीपन), कार्य (कटाक्ष-भुजोत्क्षेपणादि), सहकारी (लज्जा, धृति, ~~औत्सुक्य~~ आदि) जब नाट्य अथवा काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो वे विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। उन विभावादियों द्वारा व्यक्त (व्यञ्जनया प्रकाशित) हुआ स्थायीभाव ही रस कहा जाता है।

बालबोधिनीकार वामन विभावादि का व्याख्यायित करते हैं →

विभावः → वासनारूपतयाति सूक्ष्मरूपेणावस्थितान् रत्यादीन् स्थायिनः विभावयन्ति, आस्वादयोग्यतां नयन्तीति विभावाः।

अनुभावः → रत्यादीन् स्थायिनः ~~सर्वाङ्ग व्यापितया कार्ये सञ्चारयन्ति सञ्चारयन्ति~~ अनुभावयन्ति अनुभवविषयीकुर्वन्ति इति अनुभावाः।

व्यभिचारीभाव → सर्वाङ्गव्यापितया रत्यादीन् स्थायिनः कार्ये चारयन्ति सञ्चारयन्ति, मुहुर्मुहुः अभिव्यञ्जयन्तीति व्यभिचारिणः।

दशरूपककार लिखते हैं →

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्ना कल्लोला इव वारिधौ॥

आचार्य अभिनवगुप्त भरतमुनि को उद्धृत करते हैं →

"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः"

आचार्य भरत के उपर्युक्त सूत्र को विभिन्न व्याख्याकारों ने अपने-अपने मत से भिन्न-२ रूप में व्याख्यायित किया है- ~~इनमें सर्व~~ यह रस सिद्धान्त का खण्डन मण्डन नहीं अपितु परिष्कार समझना चाहिए। इन व्याख्याकारों में सर्वप्रथम वेदान्ती आचार्य भट्टलोल्लट का मत (उत्पत्तिवाद)

विभावैर्ललनोद्यानादिभिरालम्बनोद्दीपनकारणैः, रत्यादिको भावो जनितः, अनुभावैः कटाक्षभुजाक्षेपप्रभृतिभिः कार्यैः प्रतीतियोग्यः कृतः, व्यभिचारिभिर्निर्वेदादिभिः सहकारिभिरुपचितो मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्ये तद्रूपतानुसन्धानान्नर्तकेऽपि प्रतीयमानो रस इति भट्टलोल्लटप्रभृतयः।

मूल रूप से इन व्याख्याकारों की विशद चर्चा आचार्य अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र की अभिनवभारती टीका में षष्ठ अध्याय के रससूत्र की टीका करते हुए की है। उसकी ही छाया में आचार्य मम्मट रससूत्र की व्याख्या करते हैं—

भट्टलोल्लट का उत्पत्तिवाद →

स्थायिनां विभावैः (आलम्बनोद्दीपन कारणैः) संयोगात (उत्पाद्योत्पादक भावरूपात), अनुभावैः (भुजाक्षेपादि कार्यैः) संयोगात (गम्यगमकभावरूपात), व्यभिचारिभिः (सहकारिभिः) संयोगात (पोष्यपोषक भावरूपात) रसस्य निष्पत्तिः (क्रमेण - उत्पत्ति, अभिव्यक्ति, पुष्टिश्च) भवति।

यह मुख्य रूप से अनुकार्य रामादि में रहता है, किन्तु नर्तक (नट) में भी रामादिरूपता का अनुभव होने के कारण वह (स्थायी) उसमें भी प्रतीत होता है, वह रस है।

आचार्य लोल्लट के मत में →

विभावैः संयोगात → जन्यजनकभावसम्बन्धात → जनितः।
अनुभावैः संयोगात → गम्यगमकभावरूपात → प्रतीतियोग्यकृतः।
व्यभिचारैः संयोगात → पोष्यपोषकभावरूपात → पुष्टियोग्यकृतः
स्थायी भावः रस रूपे उत्पद्यते।

इसके समर्थन में आचार्य अभिनवगुप्त प्राचीन आचार्यों का मत देते हैं → 'रतिः शृङ्गारतां गता रूपबाहुल्ययोगेन' काव्यादर्श - 2-281
'अधिरुह्य परां कोटिं कोपो रौद्रात्मतां गतः' काव्यादर्श 2-282

आचार्य शङ्कुक ने इस मत को आठ तर्कों से खण्डित किया है—
(1) विभावाद्ययोगेन स्थायिनो लिङ्गाभावेनावगत्यनुपपत्तेः। (2) भावानां पूर्वमभिधेयताप्रसंगात, (3) स्थितिदशायां लक्षणान्तरवैयर्थ्यात, (4) मन्दतरतममाध्यस्थ्यानन्त्यापत्तेः। (5) हास्यरसे षोढात्वाभाव प्राप्तेः। (6) कामावस्थासु दशस्वरूप संख्यरसभावादिप्रसंगात (7) शोकस्य प्रथमं तीव्रत्वं कालात् तनुमान्द्यदर्शनम् (8) क्रोधोत्साहरतीनां अमर्षस्थैर्यसेवाविपर्यये ह्रासदर्शनमिति विपर्ययस्य दृश्यमानत्वाच्च।

(2) श्री शङ्कुकस्य अनुमितिवादः →

सर्वप्रथम आचार्य चार प्रकार की लौकिक प्रतीतियों का निराकरण नट को रामादि की प्रतीति हेतु करते हैं — रामएवायम् अयमेव राम इति न रामोऽयमित्यौत्तरकालिके बाधे रामोऽयमिति, रामः स्याद्वा न वाऽयमिति, रामसदृशो अयमिति च सम्यङ्मिथ्यासंशयसादृश्यप्रतीतिभ्यो विलक्षणया चित्रतुरगादिन्यायेन रामोऽयमिति (सम्यक् मिथ्या सादृश्य संशयादि प्रतीतियों से विलक्षण) ग्रहण होने पर नट में — सेयं ममाङ्गेषु — ॥ दैवादहमद्यतया — ॥ (इत्यादि में इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग है) काव्यानुसन्धान (अनुसन्धानम् कविविवक्षितार्थस्य साक्षात्करणम्) बलात् शिक्षाभ्यासनिर्वर्तितस्वकार्यप्रकटनेन च नटेनैव प्रकाशितैः कार्यकारणसहकारिभिः कृत्रिमैरपि तथाऽनभिमन्यमानैः (कृत्रिमत्वेन अगृहीतैः) विभावादिशब्दव्यपदेश्यैः 'संयोगात्' गम्यगमकभावरूपात् अनुमीयमानोऽपि वस्तुसौन्दर्यबलाद् रसनीयत्वेनान्यानुमीयमानविलक्षणः स्थायित्वेन सम्भाव्यमानो (जायमान इव) रत्यादिर्भावस्तत्रासन्नपि सामाजिकानां वासनया चर्व्यमाणो रस इति श्रीशङ्कुकः।

→ जिस प्रकार बालकों को चित्राङ्कित अश्व में 'यह घोड़ा है' ऐसी प्रतीति होती है, उसी प्रकार सामाजिकों को नट में 'रामोऽयम्' यह प्रतीति हो जाती है। यही दर्शन शास्त्र में वर्णित चार प्रतीतियों से विलक्षण चित्रतुरगादि प्रतीति है।

→ नट श्रृङ्गारादि रस के काव्य का पाठ करता है और सहृदय सामाजिक उस काव्य के अर्थ की साक्षात सी अनुभूति कर लेता है। तथा नट अपनी शिक्षा और अभ्यास कौशल से अभिनय द्वारा नायकगत रति आदि भाव के कारण, कार्य और सहचारी को प्रकट करता है। वस्तुतः सभी कृत्रिम होते हैं, किन्तु सामाजिक उनको कृत्रिम नहीं समझते और काव्य तथा नाटक में विभाव अनुभाव और सञ्चारी भाव नाम से व्यवहृत करते हैं।

→ संयोग अर्थात गम्यगमक भाव सम्बन्ध। साध्य साधन भाव। विभावादि होने पर रति आदि भाव अवश्य होता है इस प्रकार व्याप्ति रूप सम्बन्ध।

से विभावादि के द्वारा नट में रति आदि भाव का अनुमान कर लिया जाता है। व्यतिरेकी हेतु : अत्र → 'रामोऽयं सीताविषयकरतिमान्, सीतात्मकविभावादिसम्बन्धित्वात् सीताविषयककटाक्षाभित्वात् वा यन्नैवं तन्नैवं यथाऽहम्।

(4) सामाजिकों द्वारा रसचर्वणा → अविद्यमान रति आदि भाव का ही नट में अनुमान किया जाता है। यह अनुमीयमान रति आदि भाव सौन्दर्ययुक्त वस्तु होने से आस्वादनीय है, कलात्मक होने से अन्य अनुमित वस्तुओं की अपेक्षा विलक्षण। इसी हेतु से सामाजिकगण वासना (धारावाहिनी इच्छा - बाल०) द्वारा इसका आस्वादन करते हैं

संक्षेप में → जैसे कुहरे से आच्छन्न प्रदेश में धूम की भ्रान्ति से अग्नि का अनुमान हो जाता है इसी प्रकार नट द्वारा स्वकौशल से 'ये विभावादि मेरे हैं' इस प्रकार प्रकटित वस्तुतः अविद्यमान विभाव आदि से तन्नियत (व्यापक) रति आदि का अनुमान कर लिया जाता है। उसी नट में अनुमीयमान रति का अपने सौन्दर्य के कारण सामाजिकों द्वारा आस्वादन किया जाता है और वह रस रूप कही जाती है। अतः शङ्कुक के मतानुसार रसानुमिति ही रस निष्पत्ति है

→ आचार्य अभिनवगुप्त ने उपाध्याय मत से श्री शङ्कुक के मत को प्रतिपद खण्डित किया है। यहाँ कुछ दोष उद्धृत हैं

① यहाँ अनुमिति के सभी हेतु कल्पित हैं तथा नट में स्थायीभाव की सम्भावना मात्र है। यदि रति आदि की अनुमिति भी हो जाये तो वह सामाजिक के हृदय में चमत्कारोत्पादक नहीं होगी, क्योंकि प्रत्यक्ष अनुभूति ही चमत्काराधायक होती है।

② लोक प्रसिद्धि से रस का साक्षात् अनुभव होता है क्योंकि 'रसं साक्षात्करोमि' इस प्रकार अनुभूत होता है।

③ जब सामाजिक को यह निश्चय हो जाता है कि ये वस्तुतः सीता (विभाव) आदि नहीं है तब तो नट में रति आदि नहीं है तब तो नट में रति आदि भाव की अनुमिति न होगी और सामाजिक को भी रसास्वादन नहीं हुआ करेगा।

Scanned with CamScanner

भट्टनायकस्य भुक्तिवादः →

न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते नाभिव्यज्यते, अपि तु काव्ये नाट्ये चाभिधातो द्वितीयेन विभावादिसाधारणीकरणात्मना भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानः स्थायी सत्त्वोद्रेकप्रकाशानन्दमयसंविद्विश्रान्तिसतत्त्वेन भोगेन भुज्यते इति भट्टनायकः।

पूर्व के व्याख्याकारों द्वारा वर्णित रस सूत्र के व्याख्यान मे दोष दर्शित कराते हैं कि 'न ताटस्थ्येन नात्मगतत्वेन रसः प्रतीयते, नोत्पद्यते, नाभिव्यज्यते'

वस्तुतः रस के प्राप्ति अभिनय से होती है और अभिनय से तीन व्यक्ति संबन्धित हैं— (1) नायक (2) नट (3) सामाजिक क्योंकि सामाजिक का ही रसास्वादन से विशेष सम्बन्ध है, अतः ~~सामाजिक~~ नायक और नट तटस्थ हैं। बालबोधिनीकार कहते हैं— 'तटस्थः उदासीनः। स च प्रकृते नटो नायकरामादिश्चेति द्विविधः'

नायकगतप्रतीति मानने पर → अब रामादि के अभाव से उनकी रति का भी अभाव है। असत का सत से अनुमान नहीं हो सकता। और रामगत अथवा नट गत रति मानने पर सामाजिक मे अविद्यमान रति चमत्कृत नही कर सकती।

'तदानीं रामादीनामभावेन तद्रत्यादेरप्यभावात्। असतः सत्वेन अनुमानप्रमाणाविषयत्वात्। वस्तुतो रामगतया नटगतत्वेनानुमितयापि रत्या सामाजिकेऽसत्या तच्चमत्कारजननासंभवात्।' बाल०

और भी तटस्थगत रति आदि को देखकर शृङ्गार नहीं अपितु लज्जा जुगुप्सा आदि ही होगें। अभिनवगुप्त अभिनव भारती मे भट्टनायकपक्ष से कहते हैं →

'नायकयुगलावभासे हि प्रत्युत लज्जाजुगुप्सास्पृहादिस्वोचित चित्तवृत्यन्तरोदयः। अव्यग्रतयाकाशरसत्वमपि स्यात्।' अभिनव - 6.32

रत्यादि की स्वगत प्रतीति मानने पर करुणादि मे दुःख होगा। सीतादि विभाव सामाजिक के नही हैं, देवतादि से साधारणीकरण योग्य नही, क्योंकि समुद्रलंघनादि असाधारण कार्य हैं —

'स्वगतत्वेन हि प्रतीतौ करुणे दुःखित्वं स्यात्। न च सा

Scanned with CamScanner

भट्टनायक अपने ग्रन्थ हृदयदर्पण में लिखते हैं →

"अभिधा भावना चान्या तद्भोगीकरणमेव च। अभिधाधामतां याते शब्दार्थालंकृ भावनाभाव्य एषोऽपि श्रृङ्गारादिगणो हि यत्। तद्भोगीकृतरूपेण व्याप्यते सिद्धिमान्नरः।

प्रतीतिर्युक्ता। सीतादेरविभावत्वात्। स्वकान्तास्मृत्यसंवेदनात्। देवतादौ साधारणीकरणायोग्यत्वात्। समुद्रलंघनादेरसाधारण्यात्।

भाव यह है कि → कल्पित विभावादि से नट में राम की अनुमिति नहीं होगी। सीतादि विभाव वास्तविक न होने से उत्पत्ति भी नहीं हो सकती। पूर्व से विद्यमान न होने से अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकती पुन कैसे रस सिद्धि होगी — काव्य और रूपकादि नाट्य में शब्द की संकेतित शक्ति अभिधा और उसकी पुच्छभूता लक्षणा से विलक्षण भावना नाम की भावकत्व व्यापार रहता है। वह नायकगत विभावादि का साधारणीकरण करा देता है

"अन्यसंबन्धित्वेनासाधारणस्य विभावादेः स्थायिनश्च व्यक्तिविशेषांशपरिहारेणोपस्थापनं साधारणीकरणम्" - बालबोधिनी

व्यक्ति विशेष से सम्बन्धित असाधारण विभावादि, व्यक्तिविशेषांश को त्यागकर असाधारण से जब 'भावना' शक्ति से साधारण ~~हो जाते हैं~~ (अर्थात् वह रत्यादि व्यक्तिमात्र से सम्बन्धित नहीं रहे) हुआ रत्यादि स्थायी ~~[illegible]~~ सत्त्वगुण के उद्रेक से प्रकाश और आनन्द मय बुद्धि के सेयान्तर सम्पर्क शून्य होने पर (अर्थात् सत्त्वगुणस्योद्रेकेण "रजस्तमसी अभिभूयाविर्भावेन यः प्रकाशः स एवानन्दात्मिका संवित ज्ञानम्। तस्य विश्रान्तिर्वेद्यान्तरसम्पर्कशून्यत्वेनावस्थानम्।"

इस प्रकार की आनन्दात्मिका संवित ही रस का भोग साक्षात्कार है। इस प्रकार भोजक व्यापार द्वारा ही रस का आस्वादन होता है। यह रसभोग केवल सहृदयों को ही होता है। आचार्य अभिनव की दृष्टि में सहृदय है – "येषां काव्यानुशीलनाभ्यास वशाद् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीय तन्मयी भवन योग्यता ते स्वहृदयसंवादभाजः सहृदयाः।"

आचार्य अभिनवगुप्त, अभिनवभारती में इस सिद्धान्त में निम्न दोष दिखाते हैं — ① प्रतीति आदि से भिन्न भोग क्या है, यदि रसन व्यापार को ही भोग पद से कहें तो वह भी प्रतीतिरूप ही है। उपाय भेद से दूसरा नाम रखने से क्या लाभ? जैसे एक ही पदार्थ को भिन्न-२ (प्रमाणों) प्रत्यक्ष अनुमानादि से उसका नाम प्रत्यक्ष अनुमिति रखना कहाँ तक उचित है ② उत्पत्ति तथा अभिव्यक्ति के बिना रस नित्य अथवा असत् माना जायेगा क्योंकि अप्रतीत वस्तु व्यवहार योग्य नहीं होती।

③ रस की भोगीकरण प्रतीति मानने पर, हर रस की भिन्न-२ भोगीकरण प्रतीति होती है भावादि जो की अंशादि विभिन्नतों से अनन्त भोजक व्यापार की कल्पना करनी होगी।

Scanned with CamScanner

अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद →

आचार्य अभिनवगुप्त ने ध्वन्यालोक की लोचन और नाट्यशास्त्र की अभिनवभारती टीका में रस का विशद विवेचन किया है। उनके अनुसार भरतसूत्रार्थ है —
"स्थायिनां विभावादिभिः व्यङ्ग्यव्यञ्जकभावरूपात् (संयोगात्) रसस्य अभिव्यक्तिः (निष्पत्तिः)।"
अभिनवगुप्त के मत का सार प्रस्तुत है →

"लोक (काव्यनाट्य से भिन्न स्थल) में प्रमदादि (कार्यकारणसहकारी) के द्वारा रति आदि (स्थायी) का अनुमान करने में निपुण सामाजिकों के हृदय में वासना रूप में स्थित है (रति आदि); वही काव्य और नाट्य में उन्हीं (प्रमदादि कार्यकारणसहकारी) के द्वारा अभिव्यक्त हो जाता है तो कारणत्वादि रूप छोड़कर विभावनादि व्यापार करने के कारण अलौकिक (विभाव अनुभाव व्यभिचारीभाव) नाम से व्यवहृत होते हैं तथा ये मेरे हैं, शत्रु के हैं, तटस्थ के हैं, मेरे नहीं हैं, शत्रु के नहीं हैं, तटस्थ के नहीं हैं इस प्रकार सम्बन्ध विशेष के स्वीकार, परिहार के अनिश्चय से साधारणतः प्रतीत होते हैं। यद्यपि यह स्थायी भाव नियतप्रमातृगत होता है तथापि साधारणोपाय के बल से उस समय सीमित प्रमातृभाव के नष्ट हो जाने के कारण आविर्भूत हुआ, अन्य ज्ञेय के सम्पर्क से रहित असीमित प्रमातृभाव जिसका ऐसे प्रमाता द्वारा समस्त सहृदय जनों को भासित होने वाले सामान्य रूप से अनुभूत होता है। यह रति आदि अपने आकार के समान अभिन्न रूप से अनुभूत होता हुआ भी आस्वादमात्र स्वरूप वाला, विभावादि की स्थिति पर्यन्त रहने वाला पानक रस के समान आस्वाद्यमान, सामने प्रस्फुरित सा होता हुआ हृदय में प्रवेश करता हुआ सा, सर्वाङ्गों को आलिङ्गित सा करता हुआ ब्रह्मास्वाद की तरह ~~अनुभूत होता~~ के आनन्द का अनुभव कराता हुआ, अलौकिक चमत्कार करने वाला शृङ्गार आदि रस कहा जाता है।

→ यह रस अभ्यासपटु सामाजिकों को ही अनुभूत होता है →
'ते रसिका एव रसास्वादे योग्याः न तु विरताः' इत्याद्य इत्युक्तम्। वे रति आदि का अनुमान करने में निपुण होते हैं —
'अनुमानं च → 'अयमेतद्विषयकरतिमान्, इत्यादि कार्यरूप कटाक्षादि सहकारि रूप निर्वेदादिमत्वात्, यो नैवं सो नैवं यथा विरक्तादयः' वाले।

सम्बन्धविशेष के स्वीकार परिहार का कारण —

"तस्माद् भयानकादि वैलक्षण्येन सामान्यतः 'कामिनीयम्' इति कृत्वा कामिनीत्वादिना प्रतीतिरिति।"

ये रत्यादि भाव सामाजिकों में वासना रूप में स्थित होते हैं →

वासनात्मतया → संस्कार रूपेण सूक्ष्मतया। स्थितः — पूर्वमेवावस्थितः अधुना तु विभावादिभिस्तयैवाविर्भाव मात्रमिति।"

"सवासनानानां नाट्यादौ रसस्यानुभवो भवेत्।
निर्वासनास्तु रङ्गान्तवेश्मकुड्याश्मसन्निभाः॥"

और ये सभी सहृदयों में संवाद भजते हैं → एकत्र दृष्टस्यान्यत्र तथा दर्शनं संवादः।

रसास्वादन काल में परिमित प्रमातृभाव नष्ट हो जाता है →

'रसास्वादनकालं विगलितोऽप्रतीतो यः परिमितः प्रमातृभावः 'ममैवैतेऽहमेव रसास्वादयिता' इत्येवं रीत्या अननुभूयमानो यो व्यक्तिविशेष संबंधः तद्दर्शेन उल्लिखितः प्रादुर्भूतः।

रसास्वादः → स्वाकारस्वाभिन्नः → 'स्वस्य ज्ञानस्य आकारविशेष एव विषयः न तु ज्ञानादन्यः' आस्वाद्यत्वं चर्व्यं रूपमिति भावः।

सर्वाङ्गीणमिवालिङ्गन् → प्रत्यङ्गं प्रत्यवयवमनूतं सिञ्चन्निवेत्यर्थः (उद्योत:)

रस ब्रह्मास्वाद की तरह होता है —

ब्रह्मास्वादमिवानुभावयन् → ब्रह्मास्वादमिव स्वास्वादमनुभावयन् ब्रह्मास्वादे (मुक्तिदशायां) ब्रह्ममात्रं प्रकाशते। रसे तु विभावाद्यपीति सादृश्यम्।

{ रस की अलौकिकता →

वह रस विभावादि के विनाश होने पर नहीं रहता वह 'विभावादिजीवितावधिः' है अतः कार्य नहीं। क्योंकि कार्य (घट) कारण (दण्ड कुम्भकार) आदि के न रहने पर भी रहता है, रस ऐसा नहीं है।

→ पहले से जो वस्तु सिद्ध होती है को ज्ञापक तभी उसका ज्ञान करता है किन्तु रस पूर्व से विद्यमान न रहने के कारण ज्ञाप्य नहीं है। अपि तु विभावादियों के द्वारा व्यञ्जना से प्रतीत होता हुआ चर्वणीय है अर्थात चर्वित होता है।